2. किशोरावस्था में विकास

ढ्ढ : सामाजिक, संवेगात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास

किशोरों का सांवेगिक विकास :- जैसा कि उपर्युक्त विवरण में बताया गया है कि किशोरावस्था अस्थिरता की अवस्था है। बाल मनोवैज्ञानिक जी. स्टेनले हॉल ने भी किशोरावस्था को 'तूफानी और तनाव' की अवस्था बताया है। इस अवस्था में संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर होता है। इसका कारण बालकों में होने वाली विशेष शारीरिक परिवर्तन ही हैं। आज के मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि सांवेगिकता की उथल-पुथल अथवा किशोरों में सांवेगिक विकास पर व्यक्ति को शारीरिक, सामाजिक जटिलता व सामाजिक सम्बन्धों की व्यापकता इन सबका सम्मिलित रूप से प्रभाव पड़ता है। अगर देखा जाये तो सामाजिक पहलू बड़ा व्यापक है जो शारीरिक परिवर्तन के बाद प्रमुख प्रभावशाली कारक है। समाज के अन्तर्गत प्रथम इकाई, परिवार, फिर पाठशाला एवं समूह तीनों से होता है। सामान्यत: किशोर चाहते हैं कि उनकी तीनों में प्रतिष्ठा हो। इस प्रतिष्ठा, सम्मान को पाने के उल्लेख से वातावरण से समायोजन करना पड़ता है। व्यक्ति की अनगिनत आवश्यकताएँ है, सपने हैं, सभी का पूरा होना आवश्यक नहीं है। यदि आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं होती है तो कुछ निराशा, अन्तर्द्वन्द्व की उत्पत्ति होती है। इस तरह संवेगात्मक संतुलन गड़बड़ा जाता है, व्यक्ति बेचैन महसूस करता हैं उसके उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है। व्यक्ति की प्रसन्नता दु:ख में बदलती है, समस्याएं बढ़ने लगती हैं। इस अवस्था में किशोर के भीतर शरीर और मस्तिष्क में ऐसी क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं, जिन्हें मस्तिष्क स्वयं भी देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है। किशोरावस्था के संवेग उत्तर बाल्यावस्था के ही होते हैं लेकिन उनकी तीव्रता में अन्तर पाया जाता है।

1. क्रोध–पूर्व-किशोरावस्था में बालकों तथा नवकिशोरों में क्रोध का स्वरूप भिन्न होता है। उत्तर-किशोरावस्था में क्रोध पूर्व-किशोरावस्था की अपेक्षा अधिक देर तक रहता है। इस अवस्था में क्रोध के प्राय: दो कारण होते हैं पहला, यदि-कोई काम करने की इच्छा में बाधा पहुँचाता है या अनचाही सलाह देने अथवा उस पर अनचाहा दबाव डालता है तो वह क्रोधित हो जाता है। दूसरे तरह की क्रिया जैसे विशेष समय में पढ़ने अथवा सोने में बाधा पहुँचाने पर क्रोधित होता है। लेकिन किशोरों में क्रोध की अभिव्यक्ति चलती रहती है। क्रोध के आवेश में ये जबान चलाना, गाली-गलौच करना हो सकता है।

2. भय, आकुलता व चिन्ता:–लड़कों को जो भय बाल्यावस्था में सताते हैं, अब पूर्व अवस्था में उसमें कमी आती है। अब जो भय होते हैं वे सामाजिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं। वेश (1950) के अनुसार ये भय सर्प या भ्रममय जन्तुओं, मृत्यु, सत्ता, माता-पिता की डाँट, पाठशाला की असफलता, धनंजन की हानि, आदि से संबंधित होते हैं। इस अवस्था में उसे समाज का भय अधिक सताता है कि कोई उसकी आलोचना न कर बैठे। हरलॉक के अनुसार नवकिशोर को अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा और लोकप्रियता की आकुलता रहती है। किशोरों की आकुलताएँ सामाजिक परिस्थिति से सम्बन्धित होती हैं। उत्तर किशोरावस्था में भय की संख्या कम होती जाती है।

3. ईर्ष्या:–पूर्व-किशोरावस्था में प्रेम से वंचित करने वाले पर शारीरिक आक्रमण के स्थान पर शाब्दिक आक्रमण अधिक करते हैं। जब विषम लिंगीय उपेक्षा करते हैं तब भी ईर्ष्या का भाव जागृत होता है। अपने से अधिक लोकप्रिय व्यक्तियों से भी ईर्ष्या करने लगते हैं।

4. स्पर्धा:–मित्रों से आगे बढ़ने की भावना जागृत होती है व उत्तर-किशोरावस्था में किशोर अपने से अच्छी सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले मित्र से स्पर्धा नहीं करते, बल्कि वे अपने को बड़ा दुर्भाग्यशाली व मित्र को भाग्यशाली मानते हैं।

5. जिज्ञासा:–किशोरावस्था में जिज्ञासा के क्षेत्र बदल जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के परिपक्व होने की अनेक शारीरिक क्रियाएँ होती हैं। जिज्ञासा की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार के प्रश्न करते हैं।

उपरोक्त विवरण से किशोरों में संवेगों की विस्तृत जानकारी के विकास का स्पष्टीकरण होता है। संवेगों का जीवन में बहुत महत्त्व है, आत्म पुष्टि के लिये तथा संतुष्टि के लिये, नाटक, वाद-विवाद, अन्य उत्सवों में सक्रिय भाग लेने के लिये प्रोत्साहन उन्हें देना चाहिये। माता-पिता, शिक्षक को चाहिये कि वे बालकों की क्रियाओं में बाधा न देकर उनके क्रोध का भाव और भय उत्पन्न करने में सहायक परिस्थितियों से उन्हें दूर रखकर

उनके भय संवेग पर नियन्त्रण करना चाहिये। पर्याप्त उपकरण, सुरक्षित गृह जीवन सामाजिक सुविधाएँ, उत्तेजन परिस्थितियों में ज्ञान, तनाव और भावना ग्रंथियाँ उत्पन्न होती है, जिनसे बालक के व्यक्तित्व में अव्यवस्थापन आ जाता है। बर्ट के अनुसार स्वतंत्रता, बुद्धि स्वीकृति और स्नेह के अभाव में किशोरावस्था में किशोरों में अपराध प्रवृत्ति की ओर झुकाव होने लगता है। इसलिये बाल अपराधी प्रवृत्ति को रोकने के लिये किशोरों में सुरक्षा भाव लाना, स्वतंत्रता प्रदान करना, पर्याप्त स्नेह भाव रखना व उचित मार्गदर्शन करना चाहिये।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास

किशोरावस्था को व्यापक परिवर्तनों की अवधि कहा जाता है। यह अवधि लगभग 13-14 से 19 वर्ष तक की मानी जाती है। यौवनारम्भ में सामाजिक विकास अधिक नहीं होता। इसलिये कभी-कभी इसकी पठार से तुलना की जाती है। लेकिन किशोरावस्था में समायोजन के लिये व्यक्ति को नये-नये व्यवहारों को सीखना होता है। इस प्रकार परिवर्तन की इस अवस्था में सामाजिक व्यवहार में बदलाव आता है। हरलॉक,(1975) के अनुसार इस अवस्था में प्रमुख सामाजिक व्यवहारों में नेताओं जैसे में नवीन मूल्य, सफल समूहों के साथ समायोजन एवं सामाजिक अनुमोदन के नये मूल्यों की उत्पत्ति आदि शामिल हैं। अत: जब तक व्यक्ति अपने समाज के विभिन्न सदस्यों के विचारों, भावनाओं, आदर्शों तथा व्यवहारों को भली-भाँति समझ नहीं लेता, तब उसके लिये उत्तम प्रकार का सामाजिक समायोजन स्थापित कर पाना मुश्किल है। जैसा कि हरलॉक ने बताया है कि समाज का एक अच्छा सदस्य बनने के लिये सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति सामाजिक नियमों एवं सामाजिक मूल्यों का सम्मान करे तथा समाज द्वारा प्रमाणीकृत, स्वीकृत नियमावली को अपनाये। किशोरों के लिये यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को भली-भाँति समझ लें तब व्यक्ति के भीतर सामाजिक परिपक्वता विकसित होने लगती है।

किशोरावस्था में सामाजिक भावना ज़ोर पकड़ने लगती हैं और किशोर-किशोरियों में माता-पिता की छत्र-छाया से अलग अपने समूह में अधिक आनन्द और संरक्षण के भाव की अनभूति होती है। वहाँ तक कि वह अपने समुदाय के लिये सर्वस्व अर्पण करने को तत्पर रहता है।

माता-पिता का दखल अथवा उनके कड़े नियन्त्रण से भाग निकलने के लिये बेचैन रहता है, अपने मित्र का चयन स्वयं करता है। सामाजिक उत्तरदायित्व संभालने की वृत्ति भी जागती है। किशोर समाज में अपना एक स्थान बनाना चाहता है और वह यह चाहता है कि लोग उसके महत्त्व को स्वीकार करें। वह जीवन का एक ऐसा दर्शन चाहता है जो उसे सुख, शान्ति और सफलता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करे। किशोर इस अवस्था में सामाजिक दबाव और सम्बन्धों से सामना करता है और वह ऐसा कार्य करके दिखलाना चाहता है कि समाज उसकी आलोचना की बजाय उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा करे।

किशोरावस्था में संज्ञानात्मक विकास–

किशोरावस्था में नैतिक विकास में विशेष परिवर्तन नहीं आ पाता क्योंकि बालक उचित और अनुचित व्यवहार के कारण और प्रभाव को समझने लग जाता है। बालक किशोरावस्था से पूर्व जो कुछ नैतिकता सीख चुका होता है, उसको ही व्यवहार में लाता है। उसकी आक्रामकता बढ़ जाती है। इस अवस्था में जिन बालकों में नैतिक मूल्यों का अभाव होता है, उनका अपने अध्यापकों और सहपाठियों के साथ दुर्व्यवहार करना, विद्यालय या विद्यालय के बाहर धूम्रपान करना, विद्यालय की सम्पत्तियों को नुकसान पहुँचाना, अपने विरोधियों से हाथापाई करना, परीक्षा में नकल करना, धमकी देना, लड़कियों के साथ अश्लील व्यवहार करना जैसे दोष दिखाई पड़ते हैं। ऐसे किशोर अपराधी प्रवृत्ति अपनाते हैं। इन किशोरों का पारिवारिक वातावरण असन्तुलित होता है। इन परिवारों की लड़कियों का भी नैतिक व्यवहार अनुकूल नहीं होता, वे भी अपराधी प्रवृत्तियों से लिप्त होती हैं। किशोरावस्था में नैतिकता का स्वरूप पूरी तरह जड़ जमा चुका होता है, इसलिए अब परिवर्तन की संभावना बहुत कम रह जाती है।

किशोरावस्था में किशोर स्वेच्छा से नैतिक मूल्यों का पालन करने लग जाते हैं। उनमें सहनशीलता, आत्म-सम्मान आत्म-विश्वास का विकास हो चुका होता है। उनका नैतिक व्यवहार पूर्ण रूप में वयस्कों के समान हो जाता है। नैतिक दृष्टि से परिपक्व किशोर के नैतिक मूल्यों की समाज के लिए आवश्यकता को भली-भाँति समझ लेता है इसलिए सामाजिक नियमों को ध्यान में रखकर व्यवहार करता है।

इस परिवर्तन का प्रभाव उसके सामाजिक विकास पर भी पड़ता है जो इस प्रकार है–

(i) बालक और बालिका दोनों ही अपने-अपने समूह की रचना करते हैं, जिनका उद्देश्य प्राय: मनोरंजन होता है। इसकी पूर्ति के लिए वे निकट स्थानों की यात्रा, खेल, नृत्य, संगीत सुनना आदि पर समय व्यतीत करना चाहते हैं।

(ii) समूह की रचना के कारण बालकों में सहयोग, सहानुभूति, सदभावना तथा नेतृत्व आदि गुणों का विकास होने लगता है।

(iii) इस अवस्था में बालकों में विपरीत लिंग की ओर आकर्षित होने की रूचि बढ़ जाती हैं एक दूसरे को आकर्षित करने के लिए वेशभूषा, साज-श्रृंगार तथा अन्य गुणों के दिखावा करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(iv) किशोरावस्था में किशोर की आयु बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक क्रियाओं के भाग लेने के अधिक अवसर प्राप्त होने लगते हैं एवं सामाजिक समायोजन बढ़ता चला जाता है।

(v) इस अवस्था में मित्रों की संख्या प्रारम्भ से सर्वाधिक होती है। मित्रता में दृढ़ता का आभास होता है किन्तु यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे

कम होने लगती है। धीरे-धीरे यह संख्या भी कम होने लगती है क्योंकि मित्रों की अधिक संख्या के स्थान पर गुणकारी मित्र बनाने की आवश्यकता का ज्ञान होने लगता है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि लड़कियों में मैत्रीभाव लड़कों की अपेक्षा अधिक दृढ़ होता है।

(vi) किशोरावस्था में बच्चों को अपने बुजुर्गों से किसी न किसी बात पर संघर्ष और मतभेद हो जाता है। माता-पिता बच्चों को आदर्शों के अनुसार ढालना चाहते है अथवा नैतिक आदर्श का उदाहरण प्रस्तुत करके, उसके अनुसरण करने के लिए दबाव डालते है। अनेक बार उनके ये विचार बच्चों को विद्रोह के लिए प्रोत्साहित करने लगते है।

(vii) इस अवस्था के अन्त तक किशोर बालक और बालिकाएँ किसी न किसी चिन्ता या समस्या में उलझे रहते हैं। पढ़े-लिखे परिवार में चिन्ता का मूल कारण अपने भावी कैरियर का निर्धारण करना होता है। इसके अतिरिक्त धन, प्रेम, विवाह एवं कोटुम्बिक जीवन जैसी अनेक समस्याएँ भी निरन्तर बनी रहती है। ये समस्याएँ किशोर बालक और बालिकाओं के सामाजिक विकास की गति को तीव्र या मन्द, उचित या अनुचित दिशा प्रदान करती है।

(viii) गायर और व्हाईट के अनुसार इस अवस्था में ग्रामीण बालकों पर परिवार का एवं शहरी बालकों पर मित्रों और बाहर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है।

(ix) इस अवस्था में बालकों में परा-अहम् अर्थात् नैतिकता की भावना भी पैदा होती है एवं सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा किशोर में आत्म-नियंत्रण की क्षमता पैदा होती है।

समाजीकरण की प्रक्रिया उपरोक्त अवस्थाओं में ही समाप्त नहीं हो जाती वरन् यह आजीवन चलती है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे भाषा के ज्ञान, अच्छे-बुरे की पहचान, उत्तरदायित्व का अहसास और जीवन मूल्यों के निर्धारण के कारण उत्तरोत्तर सरल होती जाती है। किशोरावस्था के पश्चात् भी यह प्रक्रिया युवावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था से गुजरती है। व्यक्ति अनेक नये पद ग्रहण करता है और उसके अनुरूप भूमिका भी निभाता है।

सामाजिक परिपक्वता की अवस्था

किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें सम्पूर्ण सामाजिक विकास का अन्य अवस्थाओं से अधिक महत्त्व होता है। किशोर बालक-बालिकाओं के भीतर सामाजिक गुणों का आविर्भाव तथा सामाजिक परिपक्वता का विकास केवल इस दृष्टि से ही आवश्यक नहीं होता क्योंकि वे सामाजिक सफलताओं के इच्छुक होते हैं, बल्कि इसलिए भी इसकी आवश्यकता होती है कि बालक द्वारा किशोरावस्था में स्थापित समायोजन उसकी भावी प्रौढ़ावस्था की रूपरेखा को निर्धारित करता है। जब तक व्यक्ति अपने समाज के विभिन्न सदस्यों के विचारों, भावनाओं, आदर्शों तथा व्यवहारों को भली-भाँति समझ नहीं लेता तब तक उसके लिए उत्कृष्ट कोटि का सामाजिक समायोजन स्थापित कर सकना कठिन होता है। जब व्यक्ति सामाजिक मूल्यों व नियमों का सम्मान करेगा और समाज द्वारा मान्यता प्राप्त गतिविधियों को अपनायेगा तभी वह समाज का एक अच्छा व प्रतिष्ठित सदस्य बन पायेगा। परन्तु यह तभी सम्भव हो पाता है जब व्यक्ति के भीतर सामाजिक परिपक्वता विकसित हो। जब कोई व्यक्ति विभिन्न सामाजिक परम्पराओं और रीति-रिवाजों में आस्था रखता है और जब वह खुशी से अपने समुदाय के प्रतिबन्धों के साथ अपना कुशल समायोजन स्थापित कर पाता है, तभी यह कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से परिपक्व हो गया है।

विद्वानों ने किशोरों को विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था कहा है। इस दौरान किशोरों में क्रियाशीलता अत्यधिक होती है और उसकी अधिकांश क्रियाएँ सामाजिक पृष्ठभूमि में होती हैं। परन्तु उसके सामाजिक व्यवहारों का जो स्वरूप पूर्व-किशोरावस्था में दिखलाई पड़ता है वह उत्तर-किशोरावस्था में पहुँचकर कुछ बदल जाता है। पूर्व-किशोरावस्था में बालक के सामाजिक व्यवहारों में प्रमुख विशेषता यह पाई जाती है कि वह प्रायः प्रौढ़ स्तर पर आचरण करना चाहता है। प्रौढ़ों की भाँति वह अपना एक छोटा-सा समूह बनाता है और एक किशोर दूसरे किशोर के साथ उसी प्रकार व्यवहार करता है जैसे एक प्रौढ़ दूसरे प्रौढ़ के साथ। यही नहीं, वह प्रायः अपने से बड़ों के साथ रहने और उनके साथ वार्तालाप में भाग लेने का इच्छुक भी होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दौरान बालक सामाजिक कार्यक्रमों, जैसे-पार्टियों, दावतों, सम्मेलनों और अन्य सामाजिक आयोजनों में सक्रिय भाग लेकर अपनी सामाजिक परिपक्वता का परिचय देता है तथा साथ ही प्रौढ़ व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त करता है।

पूर्व-किशोर में सामाजिक विकास का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है। किशोर बालक या बालिका अपने विपरीत यौन के साथियों और सहेलियों के साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करना चाहते हैं। उत्तर-बाल्यावस्था में लड़का अपने वर्ग के और लड़कियाँ अपने वर्ग के समूह में रुचि लेते हैं और विपरीत यौन के बालकों से उन्हें कुछ चिढ़-सी होती है। परन्तु किशोरावस्था में यह मनोवृत्ति समूल परिवर्तित हो जाती है और बाल्यकालीन चिढ़ और विकर्षण प्रेम तथा आकर्षण में बदल जाता है। वे अपने विजातीय मित्रों के सम्मुख सदा सुनिश्चित ढंग से व्यवहार करते हैं। पार्टियों, सैर-सपाटों, मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों, सिनेमा और नाटक आदि के लिए किशोर सदा यौन के साथियों की संगति का इच्छुक होता है।

अन्तर किशोरावस्था के खत्म होते होते बालक की सामाजिक प्रौढ़ता लगभग पूर्ण हो चुकी होती है क्योंकि किशोरावस्था के उत्तरार्द्ध में उसके समाज की परिधि बहुत अधिक व्यापक हो जाती है। अतः उत्तर-किशोर में विशेष रूप से बालक के व्यवहारों में उसकी सामाजिक परिपक्वता की झलक मिलती है। उनकी रुचियों में भी पहले की अपेक्षा अधिक स्थायित्व आ जाता है। इसी अवस्था में उसके दृष्टिकोण में

व्यापकता, व्यवहार में उदारता तथा चिन्तन में स्पष्टता आती है। सामाजिक ख्याति और नेतृत्व की उसमें बड़ी प्रबल भावना पाई जाती है जिसके कारण उसके भीतर बहिर्मुखता, वाकपटुता, कर्मठता तथा आत्मविश्वास आदि सामाजिक विशेषतायें काफी विकसित हो जाती हैं।

संज्ञानात्मक विकास

जन्म के कुछ घंटों के पश्चात् ही शिशु को इन्द्रियों के सहारे प्रारम्भिक अनुभव प्राप्त होते हैं। प्रारम्भ में शिशु के लिये किसी भी वस्तु का होना या न होना, किसी बात को याद रखना, सोचना, तर्क शक्ति आदि बातों का कोई अर्थ नहीं होता है। किन्तु आयु के बढ़ने के साथ-साथ बच्चे में अनेक ज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास होता है और वह वस्तुओं को पहचानने लगता है, याद रखने लगता है तथा क्यों व कैसे जैसे प्रश्नों से अपनी तर्क शक्ति व चिन्तन का विकास करता है। दूसरे शब्दों में संज्ञान से आशय उन सभी मानसिक क्रियाओं व व्यवहारों से है जिनके द्वारा बालक सांसारिक गतिविधियों को ग्रहण करता है, अधिगमित करता है, स्मरण रखता है एवं इसके बारे में सोचता है।

साधारण बोलचाल की भाषा में कोगनिटिव शब्द का अर्थ है- **'जानना'**। ज्ञानात्मक विकास का अभिप्राय-'बच्चे की उन मानसिक प्रक्रियाओं के विकास से है जिनके परिणामस्वरूप वह अपने तथा अपने आसपास के संसार के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है।' इसी ज्ञान के आधार पर बच्चा संकल्पना बनाता है, तर्क करके निष्कर्ष निकालता है तथा अपनी समस्याओं को सुलझाता है। अत: संज्ञान वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिशु को किसी वस्तु, घटना या परिस्थिति का ज्ञान होता है। मानसिक क्रिया को तीन चरणों में बाँटा जाता है- संज्ञान, भावबोध और क्रियावृत्ति। उदाहरण के लिए अंधेरे में जब कोई चीज रेंगती हुई दिखाई देती है तो साँप का बोध होता है। यह **संज्ञान** है। साँप देखने के पश्चात् जो भय की अनुभूति होती है, वह **भावबोध** है। भय के पश्चात् जब छिपने या भागने की प्रक्रिया होती है तो उसे **क्रियावृत्ति** कहते हैं। संज्ञानात्मक विकास की निम्नलिखित चार अवस्थाएँ हैं :

(i) जन्म से दो वर्ष की आयु तक - संवेदी गामक अवस्था
(ii) दो से सात वर्ष तक - पूर्व संक्रियात्मक अवस्था
(iii) सात से ग्यारह वर्ष तक - मूर्त संक्रियात्मक अवस्था
(iv) ग्यारह से सोलह वर्ष तक - अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था

i. **संवेदी गामक अवस्था :** जन्म से लेकर दो वर्ष तक की अवस्था को संवेदी गामक अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बच्चा अपनी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से अनुभव प्राप्त करता है। शिशु अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों- आँख, कान, त्वचा, जीभ तथा नाक आदि से प्राप्त विभिन्न संवेदों जैसे देखना, सुनना, छूना, स्वाद व सूंघने के द्वारा ही अपने आसपास के वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है तथा विभिन्न चीजों में भिन्नता करना सीखता है। जन्म के समय बच्चे की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण रूप से विकसित होती हैं तथा धीरे-धीरे ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाशीलता बढ़ती जाती है। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में शिशु संवेदात्मक उद्दीपनों के प्रति सहज क्रियाएँ करता है जैसे भूख लगने पर रोना। धीरे-धीरे वह आकस्मिक रूप से नई प्रतिक्रियाएँ सीखता है जैसे मुँह में अंगूठा जाने पर चूसना। तत्पश्चात् वह इन नई सीखी हुई प्रतिक्रियाओं को दोहराता है क्योंकि उसमें उसे आनन्द मिलता है। समय के साथ-साथ वह अपने अतीत के अनुभवों का प्रयोग तात्कालिक समस्याओं के समाधान हेतु करता है। गर्म पानी या दूध में अंगुली डालने पर जलने से वह दुबारा कभी भी गर्म पानी व दूध आदि में हाथ नहीं डालेगा तथा इशारे से समझा देगा कि दूध ठण्डा करने की आवश्यकता है। धीरे-धीरे दिन प्रतिदिन वह नये-नये व्यवहार सीखता है एवं प्रतीकों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देता है।

ii. **पूर्व संक्रियात्मक अवस्था :** यह दो से सात वर्ष तक की अवस्था है। इसमें बच्चा नई सूचनाओं और अनुभवों का संग्रह करता है। इस अवस्था में बच्चे की सोचने की क्षमता में परिवर्तन आता है और वह अपने चारों ओर दिखाई देने वाली वस्तुओं के बारे में सोचना आरम्भ कर देता है। अनेक प्रकार के प्रतीक उसकी स्मृति में जुड़ते जाते हैं तथा वह प्रतीकों को क्रियाओं से जोड़ने लगता है। उदाहरण के लिए जब भी परिवार का कोई सदस्य जूते पहनने लगता है तो वह समझ जाता है कि वह बाहर जा रहा है। इस अवस्था में वह शब्दों का उच्चारण भी करने लगता है और उसका शब्द ज्ञान बढ़ता है।

इस आयु में बच्चा स्वकेन्द्रित होता है। वह निर्जीव वस्तुओं को वास्तविक मानकर घंटों खिलौनों से खेलता रहता है। वह अधिकतर खयाली दुनिया में खोया रहता है, यथार्थ की अपेक्षा कल्पना को अधिक महत्त्व देता है और तर्क देने पर भी समझने की कोशिश नहीं करता है। उदाहरण के लिए छोटे व चौड़े गिलास की अपेक्षा पतले व लम्बे गिलास को बड़ा समझता है तथा यह समझाने पर भी कि दोनों गिलास बराबर हैं वह यह समझने को तैयार नहीं होता है। इस आयु वर्ग में बच्चे प्राय: यथार्थ से दूर अत्यधिक कल्पनाशील एवं सृजनशील होते हैं।

iii. **मूर्त संक्रियात्मक अवस्था :** यह सात से ग्यारह वर्ष तक की अवस्था है तथा इसमें बच्चे अधिक व्यवहारशील व यथार्थवादी हो जाते हैं। वे कल्पना व वास्तविकता में अन्तर करना सीख जाते हैं। तथा सचाई को समझने लगते हैं। ये बच्चे पारिवारिक रिश्ते समझने लगते हैं तथा इनके विचार क्रमबद्ध व तर्कयुक्त भी हो जाते हैं। बच्चे में अब संकल्पना का निर्माण करने की क्षमता आ जाती है। वह वर्गीकरण कर सकता है, श्रेणी बना सकता है तथा सोच-विचार कर सकता है। यही कारण है कि इस आयु के बच्चों को स्कूल भेजना चाहिए।

iv. **अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था :** किशोर संज्ञानात्मक विकास के चतुर्थ सोपान पर होते हैं जिसे **अर्मूत संक्रियात्मक अवस्था** या **औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था** कहते हैं। यह ग्यारह से सत्तरह-अठारह वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर विविध विषयों पर सोचना प्रारम्भ कर देते हैं। उनके सोच-विचार में तर्क आ जाता है। अब किशोर परिकल्पनात्मक ढंग से समस्याओं पर विचार करने लगता है। वह बातों की बारीकी, सम्बन्धिता, क्रमबद्धता आदि को समझने लगता है। प्रतीकात्मक शब्द, उपमा आदि का आशय समझने लगता है।

ठोस से औपचारिक क्रियाकलापों में परिवर्तन

इस अवस्था के बालक विविध प्रकार के तर्क-वितर्क, चिन्तन एवं परिकल्पनाएँ करने लगते हैं। किशोर किसी भी समस्या के समाधान के

लिए विविध संभावित विकल्पों के बारे में सोच सकता है। उसके विचार अब वास्तविकता से संभावनाओं की तरफ बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी दिन पिता के ऑफिस से कुछ खराब मन:स्थिति में लौटने पर छोटा बालक तो कुछ घबरा-सा जाता है किन्तु किशोर ऐसी स्थिति में कई संभावित कारणों पर विचार करता है जैसे-पिता का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो, पिता का ऑफिस में सहयोगी-मित्रों से कुछ तनाव हो गया हो, पिता का अपने अधिकारी से कुछ झगड़ा हुआ हो, पिता को स्थानान्तरण आदेश प्राप्त हुए हों या पिता की पदोन्नति होते-होते रह गई हो तथा किसी अन्य को मिल गई हो आदि-आदि। इस प्रकार किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व किशोर सभी कल्पनात्मक परिस्थितियों पर विचार करते हैं।

किशोर अब मुँह जबानी ही गणित, विज्ञान या तर्क-वितर्क के कई सवाल एवं समस्याएँ सुलझा लेता है। किसी भी सवाल या प्रश्न के पूछे जाने पर किशोर के मन मस्तिष्क में उस परिस्थिति का चित्रण हो जाता है जिसके बल पर वह समस्या का समाधान बौद्धिक क्षमता द्वारा कागज-कलम के बिना या वस्तुविशेष को सामने देखे बिना भी कर सकता है। उदाहरण के लिए छोटे बच्चों को गणित के साधारण गुणा भाग व जोड़-बाकी पहले वस्तु दिखाकर फिर हाथ व अंगुलियों पर गिनकर या कागज-कलम द्वारा करने पड़ते हैं जबकि एक किशोर मस्तिष्क में चित्रण द्वारा जोड़-बाकी, गुणा-भाग मुँह जबानी बिना कागज-कलम के कर सकता है।

किशोरावस्था आते-आते बालक की सोचने-विचारने की क्षमता में क्रमबद्धता आ जाती है। उदाहरण के लिए छोटे बालक को ड्रॉइंग करने के लिए देने पर वह कुछ भी मनपसन्द चित्र बनाकर उनमें अपनी पसन्द के रंग भरेगा चाहे वे रंग वहाँ उपयुक्त हो या नहीं। किशोर को ड्रॉइंग का विषय दिए जाने पर पहले वह विषय-वस्तु पर मनन करके मस्तिष्क में उसका चित्रण व उसमें भरे जाने वाले रंगों का एक खाका खींचेगा, फिर कागज पर हलके हाथ से बाह्य रूपरेखा बनाएगा। रूपरेखा बनने पर उसमें क्रमिक रूप से हलके से गहरे रंग भरेगा, और वास्तविक व आकर्षक रंग-सज्जा के बाद अन्तिम परिसज्जा प्रदान करेगा जिससे वह तसवीर बहुत ही आकर्षक व वास्तविक प्रतीत हो।

आपने पूर्व में भी पढ़ा है कि किशोरावस्था दिवास्वप्न की अवस्था है। इस समय किशोर बैठे-बैठे ही बहुत-सी कल्पनाएँ करने लगता है तथा कल्पनाओं में ही बहुत-सी समस्याओं को भी सुलझा लेता है। जैसे चिड़िया के पंख होते हैं लेकिन अगर उनके भी पंख लगा दिये जायें तो क्या वे उड़ सकेंगे? ऐसे प्रश्नों का वे तार्किक परीक्षण कर 'हाँ' या 'नहीं' में जवाब देते हैं।

किशोर अब विविध प्रकार की क्रियाएँ जैसे योग, पारस्परिक सम्बद्धता व्यतिक्रम एवं निषेधीकरण करने लगता है। उदाहरण के लिए वह अब दो या अधिक वर्गों को आराम से **जोड़कर** एक बड़ा वर्ग बना लेता है। जैसे-सभी वृद्ध पुरुष+सभी वृद्ध स्त्रियाँ=सभी वृद्ध। किशोर इसे **व्यतिक्रम** में भी समझ सकते हैं जैसे-सभी वृद्ध=सभी वृद्ध पुरुष+सभी वृद्ध स्त्रियाँ या फिर सभी वृद्ध पुरुष=सभी वृद्ध-सभी वृद्ध स्त्रियाँ। **पारस्परिक सम्बद्धता** की प्रक्रिया द्वारा वे विविध रास्तों से एक ही लक्ष्य तक पहुँचने में सक्षम होते हैं जैसे, वे जानते हैं कि $(3\times4)\times2=24$ होता है तथा $(2\times3)\times4$ भी 24 के ही बराबर होता है। **निषेधीकरण** की प्रक्रिया को इस उदाहरण के द्वारा समझाया जा सकता है मान लीजिये कक्षा में कुल 25 विद्यार्थी हैं तथा एक दिन भारत बंद के परिणामस्वरूप कक्षा में 25 विद्यार्थी अनुपस्थित रहे तो उस दिन कक्षा में कुल कितने विद्यार्थी उपस्थित होंगे? किशोर इस प्रश्न का उत्तर देगा कि एक भी नहीं।

तरुण किशोरों की बौद्धिक प्रक्रिया मात्रात्मकता, गुणात्मकता व प्रभाव पर आधारित होती है। किशोर एक साथ कई कारकों को जोड़ सकता है। वह परिस्थितियों को नये से नये स्वरूप में देखकर तर्क कर सकता है तथा दूसरों के सलाह-मशवरे पर आसानी से विश्वास नहीं करता है वरन् अपनी स्वयं की राय कायम करता है।

संज्ञानात्मक विकास के कारण एक किशोर में बालक की तुलना में निम्न परिवर्तन देखे जा सकते हैं :-

1. किशोर तीव्र आलोचक होते हैं। उनका अपने आसपास के लोगों व वातावरण को देखने व परखने का नजरिया तार्किक एवं विश्लेषणात्मक होता है, जिससे उनके व्यक्तिगत, सामाजिक व संवेगात्मक स्तर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अपनी आलोचनात्मक प्रवृत्ति के कारण ही किशोर अपने माता-पिता व बड़े-बुजुर्गों की कमियों को चिह्नित करने लगते हैं जिससे माता-पिता व किशोर-किशोरियों के बीच विवाद व तनाव की स्थिति बन जाती है। हमारे भारतीय माता-पिता अभी तक बढ़ते किशोरों की आलोचना को सहन नहीं कर पाते तथा उनके आपसी संबंध बिगड़ जाते हैं।

2. उत्तर किशोरावस्था आते-आते किशोर अपने से बड़ों के साथ सहायक बन कर कार्य करना पसंद नहीं करते। अपनी बढ़ती हुई आलोचनात्मक क्षमताओं के कारण वे स्वयं के काल्पनिक प्रतिमान स्थापित करते हैं तथा स्वयं को संसार में एक बड़ा सुधारकर्ता समझने लगते हैं। किशोर ये समझने व मानने लगते हैं कि बड़े उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं कर रहे हैं तथा फलत: वे काल्पनिक द्रोही बन जाते हैं। युवा होते-होते यह विद्रोह की भावना स्वयं ही खत्म हो जाती है।

3. संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ किशोर स्वयं की एक अनोखी-सी भाषा विकसित कर लेते हैं जिसमें हिन्दी-अंग्रेजी का संगम होता है। एक ही वाक्य का कुछ अंश वे अंग्रेजी में कहेंगे तो शेष वाक्यांश हिन्दी में। जैसे 'लेट्स गो फोर एक पिकनिक, बहुत मजा करेंगे।' वे अपने शिक्षकों व बड़े बुजुर्गों के नये-नये अनोखे नाम निकालते हैं, जैसे कड़क शिक्षक को भयंकर, सदैव डाँटते रहने वाले शिक्षक व माता-पिता को बादल-बिजली जैसे कई नाम दे देते हैं। बोर होना, मूड ठीक नहीं होना जैसे वाक्यांश उनके मुख्य संवादों में से हैं।

4. किशोर अपने रूप, रंग व अपनी आकृति के बारे में बहुत जागरूक होते हैं। उनकी सीमित समझ के कारण वे महसूस करते हैं कि सारी दुनिया उन्हें देख रही है। फलतः वे घंटों शीशे के सामने खड़े होकर काल्पनिक दर्शकों के रूप में स्वयं को निहारते रहते हैं।

5. बहुधा किशोर सृजनात्मक होते हैं। अतः माता-पिता व बड़े बुजुर्गों को उनकी सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। बौद्धिक क्षमता के बढ़ने के साथ-साथ सृजनात्मकता भी बढ़ती जाती है। उनकी सृजनात्मकता के भरपूर विकास के लिये घर व विद्यालय का वातावरण दोस्ताना तथा कुछ लचीलापन लिये हुए होना चाहिए।

6. ज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ किशोरों की दिवास्वप्न देखने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ उनकी परिकल्पनाएँ धनात्मक व सुनिश्चित होने लगती हैं। अब उन्हें सपनों में असफल होने से भय नहीं लगता क्योंकि अब तक वे **बुरे अनुभवों** से जूझने के लिए सक्षम हो जाते हैं। दिवास्वप्न देखने की प्रवृत्ति के द्वारा वे कल्पनाओं में अपनी समस्याओं के कई संभावित विकल्पों को जाँच-परख लेते हैं।

7. किशोरों में बौद्धिक विकास के साथ-साथ दीर्घावधि के मूल्य भी निश्चित होने लगते हैं। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ स्वार्थ व आत्मवाद की भावनाएँ कम होने लगती हैं तथा किशोर में तर्क-वितर्क, मूल्य एवं अभिवृत्तियाँ विकसित होने लगती हैं। इससे वे आत्मविश्वास, प्रतिस्पर्धा तथा स्वतन्त्रता के दीर्घावधि मूल्य स्थापित करने में सक्षम होते हैं।

इस प्रकार किशोरावस्था में निम्न विशेषताओं का विकास होता है-

1. तार्किक चिन्तन की क्षमता,
2. समस्या समाधान की क्षमता,
3. वास्तविक-अवास्तविक में अन्तर समझने की क्षमता,
4. वास्तविक अनुभवों को काल्पनिक परिस्थितियों में प्रक्षेपित करने की क्षमता,
5. परिकल्पनाओं को विकसित करने की क्षमता।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

1. किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर होता है इसका कारण बालकों में होने वाले विशेष शारीरिक परिवर्तन ही है।
2. भय, ईर्ष्या, आकुलता, स्पर्धा, स्नेह, हर्ष, जिज्ञासा, क्रोध आदि इस अवस्था के संवेग हैं।
3. किशोरावस्था में संवेग प्रायः तीव्र, अस्थिर, अनियंत्रित अभिव्यक्ति वाले तथा विवेक शून्य होते हैं।
4. किशोरावस्था में समायोजन के लिए व्यक्ति नये-नये व्यवहारों को सीखता है।
5. बालक और बालिका दोनों ही अपने-अपने समूह की रचना करते हैं जिसका उद्देश्य प्रायः मनोरंजन होता है।
6. किशोरावस्था में सामाजिक विकास का महत्त्व अन्य अवस्थाओं से अधिक होता है।
7. संज्ञान से आशय उन सभी मानसिक क्रियाओं व व्यवहारों से है जिनके द्वारा बालक सांसारिक गतिविधियों को ग्रहण करता है, अधिगमित करता है, स्मरण रखता है एवं इसके बारे में सोचता है।
8. किशोर संज्ञानात्मक विकास के चतुर्थ सोपान पर होते हैं जिसे अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था या औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था कहते हैं। यह अवस्था ग्यारह से सत्तरह-अठारह वर्ष तक की होती है।
9. संज्ञानात्मक विकास के दौरान किशोर परिकल्पनात्मक ढंग से समस्याओं पर विचार करने लगते हैं तथा बातों की सूक्ष्मता, सम्बन्धितता, क्रमबद्धता आदि को समझने लगता है।
10. संज्ञानात्मक विकास के कारण एक किशोर में बालकों की तुलना में विविध परिवर्तन होते हैं।
11. किशोर इस अवस्था में तीव्र आलोचक होते हैं। वे बड़ों के साथ सहायक बनकर काम करना पसन्द नहीं करते हैं, स्वयं की एक अनोखी भाषा विकसित कर लेते हैं, अपने रूप, रंग व आकृति के बारे में बहुत जागरूक होते हैं तथा बहुधा सृजनात्मक होते हैं। इस अवस्था में दीर्घावधि मूल्य भी निश्चित होने लगते हैं।
12. इस समय विभिन्न विशेषताओं का विकास होता है-तार्किक चिन्तन एवं समस्या समाधान की क्षमता बढ़ती है, वे वास्तविक एवं अवास्तविक में अन्तर समझने लगते हैं तथा उनमें वास्तविक अनुभवों का काल्पनिक परिस्थितियों में प्रक्षेपण एवं परिकल्पनाओं को विकसित करने की क्षमता आ जाती है।
13. संज्ञानात्मक विकास बालक की मानसिक योग्यता व मस्तिष्क के विकास पर निर्भर करता है।
14. मानसिक प्रक्रियाएँ संज्ञान, भाव बोध एवं क्रियावृत्ति के तीन चरणों में पूरी होती हैं।
15. शैशवावस्था में शिशु संज्ञानात्मक विकास की संवेदी गामक अवस्था; पूर्व बाल्यावस्था में पूर्व संक्रियात्मक अवस्था; बाल्यावस्था में मूर्त संक्रियात्मक तथा किशोरवय में अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था में होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर चुनें :

(द्ब) किशोरावस्था में आकुलता का कारण है-

(अ) परीक्षा परिणाम

(ब) समूह के सामने भाषण देने की झिझक

(स) लोकप्रियता

(द) उपरोक्त सभी

(द्वद्व) उत्तर किशोरावस्था में ईर्ष्या एवं स्पर्धा की प्रारूपिक प्रतिक्रिया होती है:-

(अ) शारीरिक (ब) शाब्दिक

(स) मानसिक (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(द्वद्वद्व) ..... की रचना के कारण बालकों में सहयोग सहानुभूति नेतृत्व आदि गुण विकसित होते हैं-

(अ) समूह (ब) समाज

(स) व्यक्तित्व (द) व्यवहार

(iv) किशोर संज्ञानात्मक विकास के ..... सोपान पर होते हैं:

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

(v) किशोर ..... ढंग से समस्याओं पर विचार करने लगता है :

(अ) परिकल्पनात्मक (ब) मूर्त

(स) वास्तविक (द) इनमें से कोई नहीं

(vi) उत्तर किशोरावस्था में किशोर अपने बड़ों के साथ सहायक बनकर कार्य :

(अ) करना चाहते हैं (ब) नहीं करना चाहते हैं

(स) कभी-कभी करना चाहते हैं (द) तय नहीं कर पाते

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

(द्व) किशोरावस्था में ..... के क्षेत्र बदल जाते हैं।

(द्वद्व) किशोरावस्था में क्रोध उद्दीपन करने वाली परिस्थितियाँ अधिकांशत: ..... होती है।

(द्वद्वद्व) उम्र बढ़ने के साथ-साथ भय का स्थान .... ले लेती है।

(iv) किशोर संज्ञानात्मक विकास की ..... अवस्था में आते हैं।

(v) इस समय किशोरों के सोच विचार में ..... आ जाता है।

(vi) ..... की प्रक्रिया द्वारा किशोर विविध रास्तों से एक ही लक्ष्य तक पहुँचने में सक्षम होते हैं।

3. किशोरावस्था में ईर्ष्या को समझाइये।

4. भय एवं आकुलता में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

5. संवेगावस्था में अस्थिरता के कारण को स्पष्ट कीजिये।

6. बालकों में संवेगात्मक विकास को समझाइये।

7. किशोरावस्था में संज्ञानात्मक विकास की विशिष्ट उपादेयता को समझाइये।

8. किशोरों में आकार, संख्या, रंग व समय की पारस्परिक संबद्धता का विकास कैसे होता है?

9. संज्ञानात्मक विकास में वातावरण एवं माता-पिता की क्या भूमिका है?

उत्तरमाला :

1. (i) द (ii) ब (iii) अ (iv) द (v) अ (vi) ब

2. (i) जिज्ञासा (ii) सामाजिक (iii) आकुलता

(iv) अमूर्त संक्रियात्मक (v) तर्क (vi) पारस्परिक सम्बद्धता